माता

[श्रीअरविन्दकी अंग्रेजी पुस्तक 'मदर'का हिन्दी अनुवाद]

मिलनेका पता—
गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

माता

[१]

दो शक्तियाँ हैं जिनके मिलनसे ही वह महत् और दुर्लभ वस्तु प्राप्त हो सकती है, जिसे पानेके लिये ही हमारा यह सारा उद्योग है; एक वह महदाकांक्षा—दृढ़ और कभी न चूकनेवाली महदाकांक्षा जो नीचेसे पुकारती है, और दूसरी वह महती दया जो ऊपरसे उसका उत्तर देती है।

परन्तु वह महती दया केवल प्रकाश और सत्यकी अवस्थामें ही काम करती है, झूठ और अज्ञान उसपर जो अवस्था लाद देना चाहेगा उसमें वह काम नहीं करेगी। कारण, झूठ जो कुछ चाहता है वह उसे मंजूर हो जाय तो उसका अपना जो कार्य है उसीसे वह च्युत हो जाय।

प्रकाश और सत्यकी यह अवस्था है, एकमात्र अवस्था है जिसमें वह परा शक्ति नीचे उतर आयेगी; और यही परा महाशक्ति

जब ऊपरसे नीचे उतर आती है और नीचेसे खुलकर ऊपरको उठती है तभी वह इस भौतिक प्रकृतिको जैसा चाहे वैसा बना लेती है और उसकी कठिनाइयोंको नष्ट कर देती है....इसके लिये शरणागति पूरी और सच्ची होनी चाहिये; दैवी शक्तिकी ओर हृदय अनन्य होकर खुल जाना चाहिये; सत्य जो नीचे उतर रहा है, उसीका सतत और अखण्डरूपसे ग्रहण होना चाहिये, और वैसे ही उन सब मनोगत, प्राणगत और भौतिक शक्तियों तथा रूपोंका, जिनके चलाये अभीतक यह भौतिक प्रकृति चलती है, सतत और अखण्ड त्याग होना चाहिये।

शरणागति पूरी हो, जीवके अंग-अंगमें हो। केवल अन्तरात्मा ही उसको माने और बुद्धि भी उसे स्वीकार कर ले या अन्तःप्राण भी मान जायँ और अन्तर्भौतिक चैतन्य भी उसकी सत्ताका प्रभाव अनुभव करे तो केवल इतनेसे ही काम न चलेगा। जीवके किसी भी अंगमें, बाहरी-से-बाहरी अंगमें भी कोई ऐसी बात न रह जानी चाहिये जो कोई चीज अपने अन्दर अपने लिये दबा रखे; या जो अनेक प्रकारकी शंकाओं, समझके उलटफेरों और परदोंके अन्दर छिपी रहे, जो विद्रोह करे या शरणमें जाना अस्वीकार करे।

यदि जीवका कोई अंग शरणागत हो और कोई दूसरा अंग शरणागत न हो, अपने ही रास्तेपर चलता चले या अपनी ही शर्तें सामने रखे तो जब-जब ऐसा होगा तब-तब यह समझो कि तुम अपने आप उस दयामयी देवीकी करुणाको दूर ढकेल रहे हो।

यदि अपनी भक्ति और शरणागतिके पीछे तुम अपनी इच्छाओंको, अहंकारकी अभिलाषाओं और प्राणोंके हठोंको ढाँक रखोगे, अपनी सच्ची महदाकांक्षाके स्थानमें यदि तुम इन चीजोंको रखोगे, या उसके साथ इन्हें मिला दोगे और फिर उन्हें दिव्य शक्तिपर लादना चाहोगे तो यह समझो कि दैवी शक्तिका इसलिये आवाहन करना कि वह तुम्हें दिव्यत्व लाभ करावे, केवल व्यर्थ ही है।

यदि एक तरफ़से या अपने एक अंगमें तुम सत्यके सम्मुख हो जाओ, और दूसरी तरफ़से आसुरी शक्तियोंके लिये अपने द्वार बराबर खोलते रहो तो यह आशा करना व्यर्थ है कि दयामयी दिव्य शक्ति तुम्हारे साथ रहेगी। तुम्हें इस मन्दिरको स्वच्छ रखना होगा यदि तुम इसमें चिन्मयी सत्ताको प्रतिष्ठित करना चाहते हो।

हर बार जब यह दैवी शक्ति आती और सत्यको लाती है तब तुम यदि उसकी ओर पीठ फेर दो और फिर उस झूठको बुला लो जिसे एक बार निकाल चुके हो तो दैवी शक्ति तुम्हारा साथ नहीं देगी, यह दोष दैवी शक्तिका नहीं, तुम्हारे अपने संकल्पके मिथ्याचार और शरणागतिकी अपूर्णताका है।

तुम तो पुकार करते हो सत्यकी, पर तुम्हारे अन्दर कोई बात ऐसी चीज उठा लेती है जो झूठ है, अज्ञान है और दिव्य भावके विपरीत है, या और कुछ नहीं तो ऐसी चीजको सर्वथा छोड़ देनेको तैयार नहीं होती, तो यह समझो कि तुम्हारे ऊपर आक्रमण होता रहेगा और भगवती तुमसे पीछे हटती ही जायँगी। इसलिये पहले यह देखो कि तुम्हारे अन्दर वह कौन-सी चीज है जो असत्य है, अज्ञानमय है, और उसका सतत त्याग करो; तभी तुम अधिकारी होगे कि दिव्यत्व लाभ करनेके लिये दैवी शक्तिका आवाहन करो।

यह मत सोचो कि सत्य और मिथ्या, प्रकाश और अन्धकार, शरणागति और स्वार्थ एक साथ उस गृहमें रह सकते हैं जो भगवतीके रहनेके लिये समर्पित कर दिया गया।

दिव्यत्वलाभ सर्वांगमें होना चाहिये इसलिये उसकी बाधक वस्तुका त्याग भी सर्वांगसे होना चाहिये।

इस मिथ्या धारणाको भी त्याग दो कि, तुम जब जैसे चाहोगे और तुम स्वयं भगवान्के निर्दिष्ट पथपर न चलो तब भी, भगवती तुम्हारे लिये स्वयं ही सब कुछ करेंगी या उन्हें करना ही पड़ेगा। अपनी शरणागति सच्ची और पूरी करो, तभी तुम्हारे लिये बाकी सब कुछ किया जायगा।

अज्ञान और आलस्यमें पड़े-पड़े यह मत सोचो कि दैवी शक्ति ही तुम्हारे लिये शरणागति भी कर देंगी। भगवान् यह चाहते हैं कि तुम भगवतीकी शरण लो, पर तुम्हारे ऊपर इसका कोई बन्धन नहीं है; जबतक वह दिव्यत्वलाभ नहीं होता, जिसको प्राप्त करनेपर कोई वहाँसे च्युत नहीं होता, तबतक हर समय तुम स्वतन्त्र हो, चाहो तो दैवी शक्तिको अमान्य कर सकते हो, अपने पाससे उसे हटा सकते हो, शरणागति करके भी चाहो तो उसे लौटा भी ले सकते हो यदि उसके आध्यात्मिक परिणामोंको भोगनेके लिये भी तैयार हो जाओ। तुम्हारी यह शरणागति स्वतः प्रवृत्त और बन्धनरहित होनी चाहिये, जीते-

जागते जीवकी-सी होनी चाहिये, चलनेवाले या अचल चैतन्यरहित जड इंजन या यन्त्रकी-सी नहीं ।

जडत्ववश कुछ न करना अनेक बार वास्तविक शरणागति-सा मालूम होता है, पर जड अकर्मण्यतासे कोई सत्य और सामर्थ्य नहीं उत्पन्न हो सकता । भौतिक प्रकृति, जडत्ववश अकर्मण्य होनेसे ही प्रत्येक तामस और आसुरी प्रभावका शिकार बनती है । दैवी शक्तिके कर्म करनेके लिये ऐसी अधीनता होनी चाहिये जिसमें प्रसन्नता हो, बल हो और जो अधीनतामें भी सहायक हो; यह आज्ञाकारिता सत्यके ज्ञान-दीप्त अनुयायीकी, अन्तर्जगत्में अन्धकार और असत्यसे लड़नेवाले वीर योद्धाकी, देवाधिदेवके सच्चे सेवककी, आज्ञाकारिता होनी चाहिये ।

यही सद्वृत्ति है और जो इसे धारणकर रख सकते हैं, वे ही ऐसी श्रद्धा बनाये रह सकते हैं जो निराशाओं और कठिनाइयोंसे विचलित न हो और इस कठिन अग्निपरीक्षासे निकलकर उस महान् विजय और उस महत् दिव्यत्वको प्राप्त कर सकते हैं ।

[२]

जगत्में जो कुछ भी होता है उसमें प्रत्येक कार्यके पीछे ईश्वर अपनी शक्तिके रूपमें रहता है, पर अपनी योगमायासे छिपा रहता है और अपरा प्रकृतिमें जीवके अहंकारके द्वारा सब कर्म करता है।

योगमें भी ईश्वर ही साधक है और ईश्वर ही साधना है; यह उसीकी शक्ति है जो अपनी ज्योति, सामर्थ्य, ज्ञान, चैतन्य और आनन्दके साथ आधार (मन, प्राण और जडशरीर)

पर कर्म करती है और जब इस आधारके कपाट उसके लिये खोल दिये जाते हैं तब वही अपनी इन दिव्य शक्तियोंको उसमें भर देती है जिससे साधना हो पाती है। परन्तु जबतक अपरा प्रकृति सचल रहकर जीवको चलाती है तबतक साधकके लिये वैयक्तिक प्रयत्न करना भी आवश्यक होता है।

यह वैयक्तिक प्रयत्न त्रिविध है—महत् आकांक्षा, त्याग और शरणागति।

महदाकांक्षा—ऐसी कि जो सदा जाग्रत हो, सतत हो और अविरत हो—मनकी इच्छा और वही हृदयकी खोज, उसीमें प्राणोंकी सम्मति और ऐसी इच्छाशक्ति कि जो भौतिक चेतना और प्रकृतिको खोलकर नमनशील बना दे।

त्याग——याने अपरा प्रकृतिकी गतियोंका त्याग—मनकी कल्पनाएँ, इसके विचार और अनुराग, इसकी आदतें और बनावटें इन सबका ऐसा त्याग कि शून्य शान्त मनमें सच्चे ज्ञानको रहनेका निर्बन्ध स्थान मिले; प्राणमयी प्रकृतिकी संपूर्ण वासनाओंका त्याग—

माँग, तरस, सनसनी, मनोविकार, स्वार्थ, अभिमान, अहंमन्यता, लोलुपता, लोभ, ईर्ष्या, मत्सर, सत्यसे असूया इन सबका ऐसा त्याग कि शान्त, विशाल, दृढ़ और समर्पित प्राणमय सत्तामें सच्ची शक्ति और आनन्द ऊपरसे उभर आवे; भौतिक प्रकृतिकी मूढ़ता, संशय, अविश्वास, अन्धकार, हठ, क्षुद्रता, आलस्य, परिवर्तनकी अनिच्छा, तमस् इन सबका ऐसा त्याग कि उत्तरोत्तर दिव्य होनेवाली कायामें ज्योति, शक्ति और आनन्दकी वास्तविक दृढ प्रतिष्ठा हो जाय।

शरणागति—ईश्वर और शक्तिके चरणोंमें अपनी शरणागति, हम जो कुछ हैं, जो कुछ हमारे पास है और जितने प्रकारका हमारा भौतिक, मानसिक आदि चैतन्य है और जितने प्रकारकी गतियाँ हैं उन सबके साथ शरणागत होना।

साधक जितना ही शरणागति और आत्मसमर्पणमें अग्रसर होगा, उतना ही उसे इस बातका अनुभव होगा कि ईश्वरी

शक्ति ही साधना कर रही है, ईश्वरी शक्ति ही उसमें अधिकाधिक प्रवेश कर रही है और दिव्य परा प्रकृति उसमें अपनी स्वच्छन्दता और पूर्णता स्थापित कर रही है। जितना ही अधिक यह अनुभव उसके अपने वैयक्तिक प्रयत्नका स्थान अधिकार कर लेता है उतनी ही तेजी और वास्तविकताके साथ उसकी उन्नति होती है। परन्तु वैयक्तिक प्रयत्नकी आवश्यकता तबतक रहती ही है—दैवी शक्ति वैयक्तिक प्रयत्नका स्थान पूर्णरूपसे तबतक अधिकार नहीं कर लेती—जबतक शरणागति और आत्मसमर्पण सर्वथा सर्वांगमें, सिरसे पैरतक, सत्य और पूर्ण नहीं होते।

यह स्मरण रखो कि ऐसी तामसिक शरणागति जिसमें शरणागतिकी शर्तें पूरी नहीं की जातीं और ईश्वरसे ही सब कुछ करनेको कहा जाता है, जिसमें हमें कोई कष्ट या प्रयास न करना पड़े,—ऐसी शरणागति केवल आत्मप्रवञ्चना है, इससे मुक्ति और पूर्णत्व नहीं प्राप्त होते।

[३]

इस जीवनमें सब प्रकारके भय, संकट और सर्वनाशसे बेलाग—बेचोट बचकर आगे बढ़े चलनेके लिये दो ही चीजोंकी आवश्यकता है और ये दोनों चीजें ऐसी हैं जो सदा एक दूसरे-के साथ रहती हैं— (१) भगवती माताकी दया और (२) तुम्हारी ओरसे, ऐसा अन्तःकरण जो विश्वास, सचाई और शरणागतिसे पूर्ण हो। तुम्हारा विश्वास विशुद्ध, निश्छल और पूर्ण होना चाहिये। मनमें और प्राणोंमें यदि ऐसा अहंकार-युक्त विश्वास हो कि जिसमें बड़े बननेकी वासना, अभिमान, वृथाडम्बर, मानसिक प्रगल्भता, प्राणोंकी स्वेच्छाचारिता, व्यक्तिगत माँग, निम्नप्रकृतिके क्षुद्र सन्तोष प्राप्त करनेकी कामनाके कलंक लगे हुए हों तो ऐसा विश्वास ऊर्ध्वगमना-क्षम और धूमाच्छन्न अग्निशिखाके सदृश है जो ऊपर स्वर्गकी ओर उज्ज्वलित नहीं हो सकती। यह समझो कि तुम्हें जो जीवन मिला है वह ईश्वरी कार्यके लिये है, ईश्वरी तत्त्वको प्रकट करनेमें सहायक होनेके लिये है। और किसी बातकी इच्छा मत करो, केवल यह चाहो कि ईश्वरी चैतन्यकी ही पवित्रता, शक्ति, ज्योति, विशालता, शान्ति और आनन्द प्राप्त हो और

वह तुम्हारे मन, प्राण और शरीरको पलटकर दिव्य और पूर्ण बनाये बिना नहीं छोड़ें। और कोई चीज मत माँगो, केवल यही इच्छा करो कि वह दिव्य, आध्यात्मिक और विज्ञानमय सत्य तुम्हें प्राप्त हो; पृथिवीपर और तुम्हारे अन्दर और उन सबोंके अन्दर जो ऊपरसे पुकारे गये हैं और चुन लिये गये हैं, इस सत्यकी सिद्धि हो, और इसकी सृष्टिके लिये और विरोधी शक्तियोंपर इसकी विजय-प्राप्तिके लिये जिन अवस्थाओंकी जरूरत है वे तैयार हो जायँ।

तुम्हारी सहृदयता और शरणागति असली और पूरी होनी चाहिये। आत्मसमर्पण करते हो तो पूरे तौरपर करो, इसमें अपनी कोई खास माँग मत रखो, कोई शर्त मत रखो, अपने लिये कुछ अलग करके मत रखो—ऐसा आत्मसमर्पण करो कि तुम्हारे अन्दर जो कुछ भी है वह भगवती माताका हो जाय और अहंकारके लिये कुछ भी बचा न रहे या किसी अन्य शक्तिको भी कुछ न मिले।

जितनी ही अधिक तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी, सचाई बढ़ेगी और शरणागति पूरी होगी, उतनी ही अधिक तुम्हारे ऊपर दया रहेगी और तुम्हारी रक्षा होगी। और जब भगवती माताकी

दयादृष्टि और रक्षक हस्त तुम्हारे ऊपर है तब कौन है जो तुम्हारे ऊपर आघात कर सके या जिससे तुम्हें डरनेकी जरूरत हो ? माताकी थोड़ी-सी भी दया, उसके रक्षक हाथका जरा-सा भी स्पर्श तुम्हें सारी कठिनाइयों, विघ्न-बाधाओं और संकटोंके पार कर देगा; जब तुम ऊपर-नीचे, अगल-बगल, आगे-पीछे सर्वत्र माताकी ही सत्ताको देख रहे हो, तब तो तुम अपने रास्तेपर निर्भय और निश्चिन्त होकर आगे बढ़े चले जा सकते हो, क्योंकि यह रास्ता तो उन्हींका है, माताके इस मार्गमें किसी विभीषिकाकी परवा नहीं, किसी शत्रुका भय नहीं, चाहे वह कितना ही बलवान् हो—इस दुनियाका हो या दूसरी किसी भी छिपी दुनियाका। माताके वरद हस्तका स्पर्श कठिनाइयोंको महान् लाभके सुअवसर बना देता है और दुर्बलताको निष्कम्प बलमें परिणत कर देता है। भगवती माताकी दया ही तो भगवान्‌की 'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं' महाशक्ति है और आज या कल उसका प्रभावकार्य होगा ही, वह भगवान्‌का अमिट आदेश है, उसको कोई मिटा नहीं सकता, उसकी गतिको कोई रोक नहीं सकता।

[४]

रुपया एक विश्वजनीन शक्तिका दृश्य-चिह्न है। यह शक्ति भूलोकमें प्रकट होकर प्राण और जड़के क्षेत्रपर अपना काम करती है। बाह्य जगत्की पूर्णताके लिये यह अनिवार्य है। मूलतः और अपनी यथार्थ क्रियामें यह शक्ति है ईश्वरकी ही। पर ईश्वरकी अन्य शक्तियोंके समान यह शक्ति भी पृथिवीपर प्रेरित की गयी है और अपरा प्रकृतिके अज्ञानान्धकारमें अहंकारके उपयोगोंके लिये इसका अपहरण हो सकता है या असुरोंके कब्जे में आकर उनके मनोरथको सफल करनेके लिये यह विकृत की जा सकती है। यथार्थमें यह उन तीन शक्तियोंमेंसे—अधिकार, धन और स्त्री—एक है जिनकी ओर मानवी अहंकार और असुर सबसे अधिक आकर्षित होते हैं और जो प्रायः ऐसे लोगोंके हाथमें

रहती हैं जिनके हाथमें ये न रहनी चाहिये और इन लोगोंके द्वारा इन शक्तियोंका बड़ा ही दुरुपयोग होता है। धनके चाहनेवाले या धनके रखनेवाले प्रायः धनके अधिकारी नहीं वल्कि धनके अधिकारमें (वशमें) रहनेवाले होते हैं; धनको असुरोंने जो इतने कालसे अपने कब्जेमें रखा है और इसका दुरुपयोग किया है, उससे धनपर उसकी ऐसी आसुरी छाप पड़ी हुई है कि इसके विकृत करनेवाले प्रभावसे पूरे तौरपर शायद ही कोई वचता हो। इसीलिये अनेक साधन-मार्गोंमें धनके विषयमें बड़े संयम, अनासक्ति और त्यागका कड़ा नियम है और धन रखनेकी वैयक्तिक और अहंकारयुक्त इच्छाका बड़ा निषेध है। कुछ तो धनको छूना ही पाप समझते हैं और दरिद्रता एवं अपरिग्रहको ही एक मात्र, अध्यात्म-जीवनकी अवस्था मानते हैं। पर यह भूल है, इससे यह शक्ति दानवी शक्तियोंके ही हाथमें रह जाती है। सारा धन ईश्वरका है और साधकके लिये श्रेष्ठ पराबुद्धिका मार्ग यही है कि ईश्वरके लिये इसे फिर जीत ले और दैवी पद्धतिसे दैवी जीवनके लिये इसका उपयोग करे।

धनकी शक्ति, उसके द्वारा प्राप्त साधनों और उससे बननेवाले कामसे तुम्हें वैरागियोंकी तरह भागना भी नहीं चाहिये, न इन चीजोंके प्रति तुम्हारे मनकी कोई राजसिक आसक्ति ही होनी चाहिये और न इनके भोगकी दासतामें ही पड़े रहना चाहिये। धनको केवल यह समझो कि यह एक शक्ति है जिसे माताकी सेवाके लिये फिर जीत लाना होगा और लाकर माताके ही चरणोंमें अर्पण करना होगा।

सारा धन भगवान्‌का है और आज यह जिन लोगोंके हाथमें है वे केवल उसके ट्रस्टी हैं, मालिक नहीं। आज यह उनके पास है, कल और किसीके पास हो सकता है। जब तक यह इनके हाथमें है तबतक इस ट्रस्टको ये लोग कैसे निबाहते हैं, किस भावसे निबाहते हैं, किस चेतनासे उसका उपयोग करते हैं और क्या उपयोग करते हैं—इसी एक बातपर सारी बात निर्भर करती है।

अपने वैयक्तिक काममें जब तुम इस धनका उपयोग करो तब यह समझो कि जो कुछ तुम्हारे पास है, जो कुछ तुम्हें मिलता है या जो कुछ तुम ले आते हो, वह सब माताका

है। स्वयं कुछ भी मत चाहो, जो कुछ वह तुम्हें दे दें उसीको ग्रहण करो और उसी काममें उसका उपयोग करो जिस कामके लिये वह तुम्हें दिया गया हो। नितान्त निःस्वार्थ, पूर्ण प्रामाणिक, पूरा-पूरा हिसाब रखनेवाले और तपसीलकी एक-एक बातमें पूरी सावधानी रखनेवाले उत्तम ट्रस्टी बनो, सदा यह ध्यान रखो कि यह उनका धन है, तुम्हारा नहीं जो तुम व्यवहार कर रहे हो। इसके विपरीत, जो कुछ तुम्हें उनके लिये मिलता है, श्रद्धाके साथ उसे उनके सामने रखो; अपने किसी काममें या किसी गैरके काममें उसे मत लगाओ।

कोई मनुष्य धनी है केवल इसीलिये उसके सामने अपना सिर नीचा मत करो; उसकी चमक-दमक, शक्ति या प्रभावके वशीभूत मत हो। जब तुम माताके लिये माँगते हो तब तुम्हें यह ध्यान रहना चाहिये कि तुम्हारे द्वारा माता ही माँग रही हैं और अपनी ही चीज़का किञ्चित् अंश माँग रही हैं; इस तरह जिस आदमीसे तुम माँगो वह इसका क्या प्रत्युत्तर देता है उसीसे उसकी परीक्षा होगी।

यदि धनकी आसक्तिके लेपसे तुम मुक्त हो, पर वैरागियोंकी तरह तुम उससे भागते भी नहीं हो तो ईश्वरी कर्मके लिये धन प्रस्तुत करनेकी अधिकतर शक्ति तुम्हें प्राप्त होगी। मनमें समता हो, पूरी निस्पृहता हो और जो कुछ तुम्हारे पास है और जो कुछ तुम्हें मिले और जितनी भी अर्जन करनेकी शक्ति तुम्हारे अन्दर है वह सब माताके चरणोंमें माताके ही कार्यके लिये पूर्ण समर्पण हो, ये ही तो इस मुक्तिके लक्षण हैं। धन और उसके उपयोगके सम्बन्धमें मनकी कोई चञ्चलता, कोई माँग, कोई ईर्ष्या किसी-न-किसी अपूर्णता या बद्धताका निश्चित लक्षण है।

इस विषयमें उत्तम साधक वही है जो दरिद्रताके साथ रहनेको कहा जाय तो दरिद्रताके साथ रहे, किसी भी अभावकी वेदना उसे न हो और उसकी दैवी स्थितिके पूर्ण आन्तरिक आनन्दकी क्रीड़ामें उससे कुछ भी बाधा न पड़े और वही फिर, वैभवके साथ रहनेको कहा जाय तो, वैभवके साथ रहे और अपने धनकी आसक्ति या वासनामें एक क्षणके लिये भी पतित न हो, या उन चीज़ोंसे भी आसक्त न हो जिनका वह

उपयोग करता है, या उस भोगकी दासतामें वद्ध न हो या धनकी अधिकारिताद्वारा निर्मित अभ्यासोंसे दुर्वलकी तरह आसक्त न हो । उसके लिये तो भगवान्‌की इच्छा और भागवत-आनन्द ही सब कुछ है ।

दिव्य सृष्टिमें धनशक्ति भगवतीको ही पुनः प्राप्त करा देनी होगी और उसे एक सत्यमय, सुन्दर और सामञ्जस्यमय सजावट (संघटन) के लिये, उपयोगमें लाना होगा । भगवती माता अपनी सृष्टिशक्ति-सम्पन्न दृष्टिके अनुसार जैसी व्यवस्था करेंगी उसी व्यवस्थाके अनुसार एक नवीन दिव्यालोकित प्राणमय और जड़मय जीवनका सिलसिला बाँधनेके लिये इसका उपयोग करना होगा । पर इससे पहले यह धनशक्ति उनके लिये जीतकर लौटा लानी होगी और इस विजययात्रामें वे ही सबसे अधिक वलवान् होंगे जो अपने स्वभावके इस अंशमें प्रभावशाली और उदार और अहंकाररहित होंगे और अपने लिये कुछ माँगे विना या बचाकर रखे विना, निःसंकोच आत्मसमर्पित होकर भागवत महाशक्तिके शुद्ध और वलवान् साधन बनेंगे ।

[५]

यदि तुम दिव्य कर्मके सच्चे कर्मी बनना चाहते हो तो तुम्हारा पहला काम यह होना चाहिये कि तुम सब प्रकारकी वासनाओं और अपनी ही ओर सर्वदा दृष्टिबद्ध अहंकार-से पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाओ। तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन भगवान्‌के लिये नैवेद्य और बलिदान होना चाहिये; कोई भी कर्म करते हुए तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य भागवत-शक्तिके कार्यमें भगवतीकी ही सेवा करना, भगवतीका ही प्रभाव ग्रहण करना, भगवतीके ही कार्यको पूर्ण करना और भगवतीका ही भौतिक दिव्यास्त्र

या उपकरण बनना है। दिव्यभाव—दिव्य चैतन्यको ही तुम्हें तबतक बराबर प्राप्त करते जाना होगा जबतक ऐसा न हो ले कि तुम्हारी इच्छा और भगवतीकी इच्छा एक हो जाय, तुम्हारे अन्दर उसकी प्रेरणाके सिवाय दूसरा कोई भाव ही न उठे, और तुम्हारा कोई भी कर्म ऐसा न हो जो तुम्हारे अन्दर तुम्हारे द्वारा उसीका दिव्य चैतन्यमय कर्म न हो।

जबतक भगवती माताके साथ तुम्हारी इसप्रकार पूर्ण कर्म-शक्तिप्रदायक एकता न हो जाय तबतक अपने आपको यह समझो कि तुम्हारे आत्मा और शरीर माताकी सेवाके लिये हैं और तुम्हें जो कुछ करना है वह उन्हींके लिये है। तुम्हारा यह भाव चाहे कितना भी दृढ़ क्यों न हो कि तुम मातासे पृथक् हो और पृथक् रूपसे ही सब कुछ करते हो—तुम्हीं कर्ता हो, तो भी तुम जो कुछ करो माताके लिये करो। व्यक्तिगत अहंकारयुक्त पसन्दके ऊपर जोर, अपने वैयक्तिक लाभके ही पीछे पड़ रहनेकी सारी आकांक्षा और केवल अपने ही स्वार्थका ख्याल करनेवाली वासनाकी सारी शर्तें, इन सबको अपनी प्रकृतिमेंसे जड़से उखाड़ देना होगा। कोई फल या पुरस्कार पानेकी जरा

भी इच्छा न होनी चाहिये, तुम्हारे लिये एकमात्र फल भगवती
माताकी प्रसन्नता है और पुरस्कार केवल यही है कि तुम्हारा
दैवी चैतन्य, दैवी शान्ति, दैवी शक्ति और दैवी आनन्द बराबर
बढ़ता रहे। निःस्वार्थ कर्मके लिये इतना ही बहुत है कि उसे
सेवाका आनन्द मिले और कर्मके द्वारा अन्तःशक्तिकी वृद्धिका
आनन्द प्राप्त हो।

पर ऐसा भी समय आयेगा जब तुम इस बातको अधिकाधिक अनुभव करोगे कि तुम स्वयं कर्ता नहीं प्रत्युत करण (साधन) हो। कारण पहले तो यह होगा कि तुम अपनी भक्तिके बलसे भगवती माताके इतने निकट आ जाओगे कि सब ओरसे अपना ध्यान खींचकर माताकी ओर लगाते ही और सब कुछ उनके हाथोंमें सौंपते ही वह स्वयं उपस्थित होकर तुम्हें मार्ग दिखायेंगी, प्रत्यक्ष आदेश देंगी या तुम्हारे अन्दर प्रेरणा करेंगी, वह बात बता देंगी जो करनी होगी, यह भी बता देंगी कि कैसे करनी होगी और उसका क्या फल होगा। और फिर इसके बाद तुम यह अनुभव करोगे कि भागवतं-शक्ति न केवल स्फूर्ति प्रदान करतीं या मार्ग दिखाती हैं बल्कि तुम्हारे

कार्योंको भी आरम्भ करती और पूर्ण करती हैं; तुम्हारी सारी गतियाँ उन्हींसे निकलती हैं, तुम्हारी सारी शक्तियाँ उन्हींकी हैं, मन, प्राण और शरीर उन्हींके कर्मके चैतन्यमय और आनन्दमय उपकरण हैं, उनकी लीलाके साधन हैं, इस भौतिक जगत्‌के रूपमें उनके प्रकट होनेके साँचे हैं। दैवी शक्तिके साथ इसप्रकार एक होने और उसीपर निर्भर करके रहनेकी अपेक्षा अधिक सुखमय जीवन दूसरा नहीं हो सकता। कारण, यह जीवन तुम्हें अज्ञानके झंझट और दुःखके जीवनकी सीमा पार कराकर तुम्हें फिरसे तुम्हारी आत्मिक सत्ताके सत्यमें, फिरसे तुम्हारी प्रगाढ़ शान्ति और अत्यधिक आनन्दमें ले जाता है।

जिस समय इसप्रकार रूपान्तर हो रहा हो—दिव्यजीवन विकसित हो रहा हो—उस समय बहुत ही सावधान रहकर तुम्हें अहंकारकी उलटी क्रियाओंके दागसे बचनेका पूरा प्रयत्न करना होगा। कोई ऐसी माँग या हठ तुम्हारे अन्दर न घुस आवे जिससे आत्मार्पण और आत्मबलिदानकी पवित्रता किसी प्रकार कलंकित हो जाय। किसी कर्म या उसके किसी फलकी आसक्ति न होनी चाहिये, किसी प्रकारकी शर्त पेश नहीं करनी

चाहिये, जिस शक्तिके अधिकारमें आना तुम्हारा इष्ट है उसपर अधिकार जतानेका कोई दावा न होना चाहिये, तुम उस शक्तिके पवित्र उपकरण हो इसका कोई घमण्ड भी न होना चाहिये, किसी प्रकारकी दाम्भिकता या अहंमन्यता रहनी ही न चाहिये। महाशक्तिकी जो महती शक्तियाँ तुम्हारे द्वारा कार्य कर रही हैं उनका मन, प्राण या तनके किसी हिस्सेकी किसी वातके लिये कोई दुरुपयोग न होना चाहिये, माताकी प्रसन्नता-का कोई ध्यान न रखकर केवल अपनी पृथक् वैयक्तिक प्रसन्नताके लिये उनसे कोई काम न लेना चाहिये। तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारी सचाई, तुम्हारी महदाकांक्षाकी पवित्रता अनन्य होनी चाहिये और सत्ताके प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक स्तरमें होनी चाहिये; ऐसा होनेसे विक्षोभ (विक्षेप) का प्रत्येक उपक्रम और विकृत करनेवाला प्रत्येक प्रभाव तुम्हारी प्रकृतिसे क्रमशः झड़ जायगा।

इस पूर्णताकी अन्तिम अवस्था तब आवेगी जब तुम भगवती माताके साथ पूरे तौरपर एक हो जाओगे; सत्तामें कोई भेद, कोई पार्थक्य अनुभव नहीं होगा उपकरण सेवक या कर्ताका कोई पृथक् भाव न रह जायगा प्रत्युत तुम यह अनुभव करोगे कि हम सचमुच

ही माताके ही चैतन्य और शक्तिके सन्तान और सनातन अंश हैं। माता सदा तुम्हारे अन्दर रहेंगी और तुम उनके अन्दर रहोगे; तुम्हें सदा यह सरल स्वाभाविक अनुभव होगा कि तुम्हारा विचार, तुम्हारा देखना और कर्म करना, तुम्हारा साँस लेना और चलना तक सब उन्हींसे निकलता है और उन्हींका है। तुम यह जानोगे, देखोगे और अनुभव करोगे कि तुम्हारा व्यक्तित्व और सामर्थ्य उन्होंने ही अपने अन्दरसे उत्पन्न किया है, अपने ही अन्दरसे क्रीडामात्रके लिये बाहर निकाला है; और इस अवस्थामें भी तुम सदा उनके अन्दर सुरक्षित हो, उन्हींकी सत्तासे तुम्हारी सत्ता बनी है, तुम उन्हींके चैतन्यके चिदात्मा हो, उन्हींकी शक्तिकी शक्ति, उन्हींके आनन्दके आनन्द हो। जब यह अवस्था पूर्ण होगी और उनकी विज्ञानमयी शक्तियाँ सरल स्वच्छन्दताके साथ तुम्हें चला सकेंगी, तब तुम दिव्य कर्ममें पूर्ण होगे; ज्ञान, इच्छा, कर्म तुम्हारे निश्चित, सरल, ज्योतिर्मय, स्वयम्भू, दोषरहित, परमपदसे निःसृत अखण्डप्रवाह, सनातन दैवी उद्योग बनेंगे।

[६]

माताकी चार शक्तियाँ उनके प्रधान व्यक्ति रूपोंमेंसे चार हैं। उनकी दिव्य सत्ताके चार भाग और चार रूप हैं जिनके द्वारा वह अपनी प्रजाओंमें कर्म करतीं, इन विविध लोकोंमें अपनी सृष्टियोंकी व्यवस्था और समन्वय करती हैं तथा अपनी सहस्र-सहस्र शक्तियोंका कर्म निर्देश करती हैं। माता एक ही हैं, पर वह

हमारे सामने विविध रूपोंमें आती हैं, उनकी अनेक शक्तियाँ और व्यक्तियाँ हैं, अनेक स्फुलिंग और अनेक विभूतियाँ हैं जो इस विश्वमें उनका कर्म करती हैं। जिनको हम माता कहकर पूजते हैं वह एक ही हैं और वही भगवान्की वह दिव्य चैतन्यमयी शक्ति हैं जो 'सर्वमिदं' के ऊपर खड़ी हैं; हैं एक, पर इतनी अनेकरूपा हैं कि उनकी गतिको देखना या समझना तेज-से-तेज गतिवाले मन और मुक्त-से-मुक्त तथा व्यापक-से-व्यापक बुद्धिके लिये भी असम्भव है। माता पुरुषोत्तमका चैतन्य हैं, पुरुषोत्तमकी शक्ति हैं। वही सारी सृष्टि करनेवाली आदि शक्ति हैं और अपनी इस सारी सृष्टिसे बहुत ऊँचेपर रहती हैं। पर उनकी इस विविध विलक्षण गतिकी झाँकी देखी जा सकती है, समझी जा सकती है उन्हींकी प्रतिमाओं—उन्हींके ऐसे रूपोंको देखकर जो अपने स्वभाव और कर्ममें मूलरूपसे अधिक व्यक्त और मर्यादित होनेके कारण अधिक हृदयंगम करने योग्य हैं और जिनके द्वारा माता अपने सन्तानोंके सामने प्रकट होनेमें अनुमत होती हैं।

माताकी सत्ताके तीन रूप हैं जो तुम जान सकते हो जब तुम हमको और इस विश्वको धारण करनेवाली चिन्मयी शक्तिके

साथ अपनी एकता (अभिन्नता) का अनुभव करने लगोगे। लोका-तीत परा आद्या शक्तिके रूपमें वह अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके ऊपर खड़ी हैं और पुरुषोत्तमके नित्य अव्यक्त रहस्य तथा उनके इस विश्व ब्रह्माण्डके बीचकी लड़ी हैं। फिर हैं विश्वशक्ति, विश्वव्यापिनी महाशक्ति जो इन सबका सृजन करतीं और इन अनन्त कोटि गतियोंके क्रमोंको तथा इन अनन्त कोटि शक्तियोंको धारण करतीं, उनमें समायी रहतीं, उन्हें धारे रहतीं और चलाती हैं। इसके बाद हैं व्यक्ति-शक्ति जो माताकी सत्ताकी इन दो विराट् गतियोंकी शक्तिका व्यक्तरूप हैं जिनके द्वारा माताके वे दो विराट् स्वरूप हमारे लिये ज्वलन्त और निकटतर हो जाते हैं और जो मनुष्य तथा दिव्य प्रकृतिके बीचमें मध्यवर्ती शक्तिके तौरपर हैं।

एकमेवाद्वितीया परा आद्या शक्तिके स्वरूपमें माता सारे विश्व-ब्रह्माण्डोंके ऊपर रहती हैं और पुरुषोत्तमको अपने सनातन चैतन्यमें धारे रहती हैं। केवलमात्र वही निर्गुण लोकातीत शक्ति और अनिर्वचनीय सत्ताका अपने अन्दर वास कराती हैं; जिन सब सत्योंको व्यक्त करना होता है उन्हें धारण करती

हुई या आह्वान करके माता उनको उस रहस्यलोकसे जहाँ वे छिपे रहते हैं, नीचे अपने अनन्त चैतन्यकी ज्योतिमें ले आती हैं और उन्हें अपने सर्वशक्तिसम्पन्न तेज और अनन्त जीवनमें-से शक्तिका रूप देकर विश्वमें शरीर प्रदान करती हैं। परमेश्वर उनके अन्दर अनन्त सच्चिदानन्दके रूपमें सदा ही व्यक्त है जो उन्हींके द्वारा लोकोंमें ईश्वर और शक्तिके अद्वैत और द्वैत चैतन्य तथा पुरुष और प्रकृतिके द्वैत तत्त्वके रूपमें व्यक्त होता है, जो उन्हींके द्वारा इन सब विश्वोंमें, लोकोंमें, देवताओंमें और उनकी शक्तियोंमें आविर्भूत होता है और जो उन्हींके कारण ज्ञात-अज्ञात समस्त विश्व-ब्रह्माण्डोंका सर्वमिदं होकर प्रकट होता है। यह सारा पसारा परमेश्वरके साथ उन्हींका खेल है; सब कुछ सनातनके रहस्योंका, उन्हींके हाथों उद्‌घाटन है—अनन्तके चमत्कारोंकी अभिव्यक्ति है। सब कुछ वही हैं, कारण जो कुछ है वह भागवत चिच्छक्तिका ही खण्ड और अंश है। यहाँ या कहीं भी कोई ऐसी वस्तु नहीं हो सकती जो उनके द्वारा निश्चित और परमेश्वरके द्वारा अनुमत न हुई हो, कोई वस्तु व्यक्त नहीं हो सकती जिसे उन्होंने ही

परमेश्वरसे प्रेरित होकर अनुभूत न किया हो और अपने सृजन-आनन्दमें उसे जीवन-बीज देकर रूप न प्रदान किया हो।

महाशक्ति—जगत्की जननी जगन्माता वही सृजन करती हैं जिसका संकल्प परमेश्वरसे उन्हींके परम चैतन्यके द्वारा प्रेरित किया जाता है। महाशक्ति इसप्रकार सृष्टियोंको रचकर उनके अन्दर प्रवेश करती हैं; इनकी सत्ता ही इन लोकोंको भागवतभाव, सर्वप्रतिपालक भागवत-शक्ति और आनन्दसे भर देती है जिनके होनेसे ही ये लोक ठहरे हुए हैं। जिसे हम प्रकृति कहते हैं वह इस महाशक्तिका केवल अत्यन्त बाह्य सर्ग (कर्म) रूप है; महाशक्ति ही अपनी शक्तियों और गतियोंका सञ्चालन और व्यवस्थापन करती हैं, वही प्रकृतिसे कर्म कराती हैं और उन सब कर्मोंके अन्दर गुप्त अथवा प्रकटरूपसे रहती हैं। जो कुछ हम देख सकते या अनुभव कर सकते या जिसे जीवनगति दे सकते हैं उन सबमें महाशक्तिकी ही सत्ता है। प्रत्येक लोक और कुछ नहीं, एक विशेष लोक-समूह या जगत्की महाशक्तिका एक विशेष खेल है और इन सब लोकोंमें वह महाशक्ति उन्हीं आद्याशक्ति भगवती माताकी विश्वव्यापिनी चिच्छक्ति और

विश्वव्यापिनी व्यक्ति हैं। प्रत्येक लोकका उन्हींकी दृष्टिमें साक्षात्कार होता है, फिर उन्हींके सौन्दर्य और शक्तिमय हृदयमें एकत्र घनीभूत होकर वह उनकी आनन्द-स्फुरणासे सृष्ट होता है।

परन्तु उनकी सृष्टिके अनेक स्तर हैं। भागवत-शक्तिके सर्ग-सोपानके अनेक पद हैं। जिस विकासके हम लोग एक अंश हैं उसके शिखरपर अनन्त सत्ता, चैतन्य, शक्ति और आनन्दके अनेक लोक हैं जिनके ऊपर अनावृत होकर प्रत्यक्ष सनातन शक्तिके रूपमें माता खड़ी हैं। वहाँ सब सत्ताएँ अनिर्वचनीय पूर्णत्व और ध्रुव ऐक्यमें रहती और विचरती हैं। कारण, माता उन्हें सदा अपनी गोदमें निरापद रखती हैं। इन लोकोंकी अपेक्षा, हमारे और भी निकट एक पूर्ण विज्ञानमयी सृष्टिके लोक हैं जिनमें माता विज्ञानमयी महाशक्तिके रूपमें, दिव्य सर्वज्ञ इच्छा और सर्व समर्थ ज्ञानकी शक्तिके रूपमें विराजती हैं—यह शक्ति इस सृष्टिके सिद्ध कर्मोंमें सर्वदा स्पष्ट रहती है और इसके प्रत्येक गतिक्रममें स्वभावतः पूर्णरूपसे वर्तमान है। वहाँकी प्रत्येक गति सत्यका पदविक्षेप है; वहाँकी सब सत्ताएँ दिव्य ज्योतिके आत्मा और शक्तियाँ और शरीर हैं; वहाँकी सब

अनुभूतियाँ एक गाढ़ और अबाध संपूर्ण आनन्दके समुद्र और प्रवाह और तरंग हैं। पर यहाँ, जहाँ हमलोग रहते हैं, अज्ञानके जगत् हैं, मन, प्राण और शरीरके जगत् हैं जो चैतन्यमें अपने उद्गमस्थानसे पृथक् हो गये हैं, जिनका यह भूलोक अर्थ-गौरव-भरा केन्द्र है और जिसके विकासका क्रम बड़ा ही सूक्ष्म और संकटमय है। इसमें इतना अन्धकार, इतना संघर्ष और इतनी अपूर्णता होनेपर भी, जगन्माता ही इसे धारण किये हुई हैं; और यह लोक भी महाशक्तिके द्वारा प्रेरित और नीत होकर अपने गुप्त लक्ष्यकी ओर ही जाता है।

अज्ञानके इस त्रिविध जगत्की महाशक्तिके रूपमें माता एक ऐसे मध्यस्थानमें रहती हैं जिसके ऊपरकी ओर वह विज्ञानमय ज्योति, वह ऋतंभर जीवन और सत्यकी वह सत्य-मय सृष्टि है जिसे यहाँ नीचे ले आना है, और दूसरी ओर याने नीचेकी ओर चैतन्य राज्यके ऐसे चढ़ते-उतरते विविध लोक हैं जो किसी दोहरी सीढ़ीके समान हैं अर्थात् एक ओर उतारका क्रम है जो जड़के जड़त्वमें आकर समाप्त होता है और वहींसे उलटकर दूसरी ओर चढ़ावका क्रम है जिसपर

चैतन्य ऊपर उठता हुआ प्राण, आत्मा और मनको प्रस्फुटित करता आत्मचैतन्यके अनन्तत्वको प्राप्त होता है। इस मध्यस्थानमें वह अपनी अन्तर्दृष्टि, अनुभूति और अन्तःशक्तिसे इस जगत्‌की विविध रचनाका संकल्प करती और इस जगत्‌के विकासकी गति निर्धारित करती हुई देवताओंके ऊपर रहती हैं और उनकी सब शक्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ सृष्टिकर्मके निमित्त उनके अन्दरसे निकलकर बाहर आती हैं और इन्हीं शक्तियों और अभिव्यक्तियोंके अंश वह भेजती हैं नीचेके लोकोंमें जो आकर यहाँकी उलझी हुई अवस्थाकी व्यवस्था बाँधते, शासन करते, युद्ध करते, और विजयी होते, इनके नियति-चक्रोंको चलाते और घुमाते हैं और इनकी समष्टिगत और व्यष्टिगत गतियोंको निर्धारित करते हैं। माताके इन उद्भवोंको ही—इन विविध दिव्य रूपों और व्यक्तियोंको ही मनुष्य नाना नाम देकर युग-युगान्तरसे पूजते आये हैं। परन्तु जैसे ईश्वरकी विभूतियोंके मन और शरीर माता ही निर्माण करती हैं वैसे ही वह अपनी इन शक्तियों और इनके उद्भवोंके द्वारा अपनी विभूतियोंके मन और तन भी निर्माण करती हैं जिसमें

भौतिक जगत्में और मानवी चैतन्यके छद्मवेशमें भी वह अपनी शक्ति और गुण और सत्ताकी कोई किरण प्रकट कर दें। इस पार्थिव-लीलाके सब दृश्य एक नाटकके समान उनके द्वारा व्यवस्थित, कल्पित और अभिनीत किये गये हैं, इसमें सब विश्व-देवता उनके सहकारी हैं और वह स्वयं आवरण ओढ़े हुई अभिनेत्री हैं।

माता ऊपरसे सबका शासन करती हैं यह नहीं, बल्कि इस छोटे-से त्रिविध संसारमें भी वह उतर आती हैं। केवल दिव्य अक्षररूपकी ओर दृष्टि निबद्ध करनेसे मालूम होगा कि यहाँकी सारी वस्तुएँ, यहाँतक कि अज्ञानकी सारी गतियाँ भी, अपनी शक्ति-को प्रच्छन्न करती हुई स्वयं माता ही हैं, अपने सत्तत्त्वमें अल्पीकृत (घटी हुई) उन्हींकी सृष्टियाँ हैं, उन्हींकी प्रकृति-शरीर और प्रकृति-शक्ति हैं। और ये सब हैं इसी कारणसे कि अनन्तकी प्रभव सम्भाव-नाओंमें कुछ ऐसा था जिसे चूनकर प्रकृतरूप प्रदान करनेका रहस्यमय आदेश परमेश्वरसे पाकर वह इस महान् आत्मबलिके लिये सम्मत हुई और उन्होंने छद्मवेशकी तरह अज्ञानकी आत्मा और रूपोंको धारण कर लिया। पर व्यक्तिरूपमें भी उन्होंने अपनेको

यहाँतक नीचा कर दिया कि वह इस अन्धकारमें उतर आयी इसलिये कि इसे ज्योतिकी ओर ले जाऊँ, झूठमें और भ्रममें आ गयीं इसलिये कि इन्हें सत्यका रूप दे दूँ, इस मृत्युमें भी आ धमकीं इसलिये कि इसे दिव्य जीवन दे दूँ, संसारके इस क्लेशमें, इस हठी शोक और दुःखमें पहुँच गयीं इसलिये कि इसके इस रूपका अन्त करके अपने महत् अत्युच्च आनन्दकी दिव्यरूप प्रदान करनेवाली प्रगाढ़तामें इसे परिणत कर दूँ। अपनी सन्तानोंके प्रति उनका मातृप्रेम प्रगाढ़ और महान् है इसीसे उन्होंने अन्धकारका यह आवरण ओढ़ना स्वीकार कर लिया है, तमस् और मिथ्याकी शक्तियोंके दारुण दुर्भाव और दुराक्रमण सह लेना मंजूर कर लिया है, जो जन्म-मृत्यु ही है, उसके तोरणद्वारके पार होनेकी वेदनाको धार लिया है, सृष्टिकी सारी व्यथा, सारा शोक और सारा कष्ट उठा लिया है, क्योंकि ऐसा मालूम हुआ कि यही एक उपाय है जिससे यह सृष्टि उठकर आलोक, आनन्द, सत्य और सनातन जीवनको प्राप्त हो सकती है। यह महायज्ञ है जिसे कभी-कभी पुरुषका यज्ञ कहते हैं, पर जो इससे अधिक गभीर अर्थमें, प्रकृतिकी ही पूर्ण आत्मबलि है, भगवती माताका ही महायज्ञ है।

इस जगत्की गति निर्धारित करनेमें और पार्थिव-लीलाके साथ उनके व्यवहारोंमें माताके चार महारूप, चार मुख्य शक्तियाँ और अभिव्यक्तियाँ विशेषरूपसे सामने आयी हैं। एक है उनकी स्थिर विशालता, व्यापक ज्ञान, अचल अनुग्रह, अफुरन्त करुणा, परम और अतिशय राजश्री और सर्वानुशासन करनेवाली महत्ताकी मूर्ति। दूसरी अभिव्यक्ति है उनके प्रभामय-सामर्थ्य, अप्रतिहत भाव, युद्ध्यमान वृत्ति, सर्वग्रासी इच्छाशक्ति, तीव्रवेग और संसारको कँपानेवाली शक्तिकी। तीसरी है सौन्दर्य, समन्वय और अनुत्तम उदात्त छन्दके प्रगाढ़ रहस्यकी सुस्पष्ट सुमधुर, चमत्कृतिजनक मनोहर मूर्ति जिसमें सारी समृद्धि जटिल और सूक्ष्मरूपसे विद्यमान है, जो सबको अपने आकर्षणसे अपनी ओर खींच लेती है, जिसकी शोभा सबको मुग्ध करनेवाली है। चौथा रूप है उस शक्तिका जिसमें अन्तस्तम ज्ञानका अत्यन्त गभीर कौशल है, जिसका कर्म जागरुक और प्रमादरहित है, जिसके यावत् व्यापारोंमें स्थिर और यथार्थ पूर्णता विद्यमान है। ज्ञान, शक्ति, सामञ्जस्य*

* भौतिक, आध्यात्मिक इत्यादि व्यापारोंमें पूर्ण सम्मिलनसे जिस सौन्दर्य और सुलालित्यकी सृष्टि होती है।

और पूर्णत्व ये इन महाशक्ति-मूर्तियोंके पृथक्-पृथक् गुण हैं, इन्हीं शक्तियोंको ये इस संसारमें ले आती हैं और मानवदेहावरण ओढ़कर विभूतियोंके रूपमें इन्हें प्रकाश करती हैं और इनके पूर्ण दिव्यपदप्राप्त अभिव्यक्तियोंको उन लोगोंमें स्थापित करेंगी जो माताके प्रत्यक्ष और जीवन्त प्रभावकी प्राप्तिके लिये अपने लौकिक (भौतिक) स्वभावको उन्मुक्त कर सकते हैं। इन चारोंको हम इन चार महानामोंसे पुकारते हैं—महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती।

राजराजेश्वरी महेश्वरी बुद्धि और मनस्के ऊपर रहनेवाली विशालतामें विराजती हैं, और इन मनस् और बुद्धिको सूक्ष्म और महान् करके ज्ञान और विशालतामें परिणत कर देती हैं अथवा उनसे भी परेकी प्रभाके द्वारा उन्हें प्लावित कर देती हैं। वह शक्तिमयी और ज्ञानमयी हैं जो हमें विज्ञानमय अनन्तत्व और विश्वव्याप्त व्यापकत्व, परमज्योतिकी ऐश्वर्यमय विशालता, चमत्कृतिजनक ज्ञानके आगार और माताकी सनातन शक्तियोंकी अपरिमेयगतिके सामने लाकर खड़ा कर देती हैं। माता शान्त हैं, अपूर्व हैं, चिरस्थिर सर्वदा महत्वपरिपूर्ण हैं।

उन्हें कुछ भी विचलित नहीं कर सकता। कारण, सम्पूर्ण ज्ञान उन्हींके अन्दर है; कोई बात ऐसी नहीं जिसे वह जानना चाहती हों और जो उनसे छिपी हो; सारे पदार्थ, सारी सत्ताएँ और उनके स्वभाव और उनकी गतिका प्रवर्तन करनेवाला जो कुछ है वह और भूलोकका धर्म, उसके काल और ये सब कैसे थे, हैं, और होनेवाले हैं यह सब माताकी ही व्याप्तिमें समाविष्ट है। उनमें वह शक्ति है जो प्रत्येक पदार्थका सामना करती और उसे अपने वशमें करती है और उनके उस विशाल अतीन्द्रिय ज्ञान और गभीर शान्तिमयी शक्तिके विरुद्ध कोई भी चीज नहीं ठहर सकती। वह सम हैं, धीर हैं, अपने संकल्पमें अटल हैं, सब मनुष्योंके साथ उनका व्यवहार जिस-तिसके स्वभावके अनुसार होता है तथा सब पदार्थों और घटनाओंके प्रति उनकी वृत्ति जिस-तिसकी अन्तश्शक्ति और अन्तःसत्यके अनुसार होती है। पक्ष-पात उनमें कुछ भी नहीं है, पर वह पुरुषोत्तमके आदेशोंका ही अनुवर्तन करती हैं; कुछ लोगोंको वह ऊपर उठाती हैं और कुछ लोगोंको नीचे ढकेल देती हैं या अपने पाससे हटाकर अन्धकारमें डाल देती हैं। जो ज्ञानी हैं उन्हें वह अधिकाधिक एवं और भी

विशद ज्ञान देती हैं; जिनमें दर्शन-शक्ति है उन्हें अपनी कल्पना और अभिप्रायमें शरीक होनेका अधिकार देती हैं; जो विरोधी हैं उनपर उस विरोधका परिणाम लादती हैं; जो अनजान और मूर्ख हैं उन्हें उन्हींकी अन्धताके अनुसार रास्ता दिखाती हैं। प्रत्येक मनुष्यके स्वभावके भिन्न-भिन्न अंशोंकी आवश्यकता और प्रेरणाके अनुसार और जिस प्रतिदानके लिये वे आहुति देते हैं उसके अनुसार माता (महेश्वरी) प्रत्युत्तर देती हैं और उनका प्रयोग करती हैं, उन-पर आवश्यक प्रभाव डालती हैं या उन्हें अपनी प्रीतस्वाधीनताके भरोसे छोड़ देती हैं जिसमें वे या तो अविद्याके पथपर समृद्धि लाभ करें या ध्वंसको प्राप्त हों। कारण, वह सबके ऊपर हैं, जगत्के कोई किसीसे बँधी नहीं, किसीमें आसक्त नहीं। तथापि उनका जो हृदय है वह विश्वजननीका हृदय है, ऐसा मातृस्नेह इतना और किसीमें नहीं है। कारण, इनकी दया अनन्त और अक्षय है; उनकी दृष्टिमें सभी उनके सन्तान हैं, उसी एकके अनेक अंश हैं; असुर, राक्षस, पिशाच और जो उनसे विद्रोह करते या शत्रुता करते हैं वे विद्रोही और शत्रु भी उनकी दृष्टिमें अपनी सन्तान ही हैं। उनका प्रत्याख्यान केवल विलम्बनमात्र है,

और उनका दण्डविधान तो करुणा ही है। पर उनकी दया उनके ज्ञानको आच्छन्न नहीं करती, न उनके कर्मको ही निर्दिष्ट पथसे फिरा ले जाती है। कारण, सर्व वस्तुओंका सत्य ही उनका एकमात्र ध्यान है; एकमात्र ज्ञान ही उनकी शक्तिका केन्द्रस्थान है और हमारे आत्मा और प्रकृतिको भागवत सत्यके साँचेमें ढालना ही उनका एकमात्र उद्देश्य और प्रयास है।

महाकालीकी प्रकृति कुछ दूसरी है। विशालताकी अपेक्षा उत्तुंगता, ज्ञानकी अपेक्षा विक्रम और सामर्थ्य ही उनकी विशेष शक्ति हैं। उनमें सर्वाभिभूत करनेवाली जैसी प्रचण्डता है, पराक्रमका महाशक्तिसम्पन्न भावप्रवाह है, एक ऐसी दैवी तीव्रता है जो प्रत्येक सीमा और बाधाको खण्डशः भग्न करनेके लिये महावेगसे धावमान होती है। उनका सम्पूर्ण देवत्व तुमुल झंझावत् कर्मके तेजोमय प्रभामें उत्प्लावित होता है; द्रुतता, सद्यफलदायी क्रमनिर्धारण, क्षिप्र और ऋजुप्रहार, अपने सामने किसीकी कोई परवा न करनेवाला सम्मुखीन आक्रमण—इन्हीं सबके द्वारा महाकाली अपनेको व्यक्त करती हैं। असुरके लिये उनका रूप बड़ा ही भयंकर है, ईश्वर-

द्रोहियोंके लिये उनकी वृत्ति अत्यन्त भीषण और क्रूर है। कारण, वह समस्त लोकोंकी रणचण्डी हैं जो रणसे कभी पश्चात्पद नहीं होतीं। अपूर्णता वह सह नहीं सकतीं, इसलिये मनुष्यके अन्दर जो-जो बात पूर्णत्वकी इच्छाके विरुद्ध होती है उसके साथ वह बड़ा ही निठुर व्यवहार करती हैं, जहाँ जो अज्ञान और अन्धकारका हठ देखती हैं वहाँ उसके साथ बड़ी क्रूरतासे पेश आती हैं। विश्वासघात, अनृत और मत्सरपर उनका कोप आशु और बड़ा ही भीषण होता है, अमंगल-कामनाका तो उनके ताड़नसे क्षणमात्रमें हनन होता है। दैवी कार्यमें औदासीन्य, उपेक्षा और आलस्यको वह बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। बे-वक्त सोनेवाले तथा इधर-उधर घूमते समय गँवानेवालेको ताड़न करके और यदि आवश्यक हो तो बड़ी तीव्र वेदना उत्पन्न करके वह तुरत जगाती हैं। जो भाव वेगवान्, सीधे और स्पष्ट होते हैं वे उन्हींके भाव हैं, जो गतियाँ संकोचरहित और अप्रतिहत होती हैं वे उन्हींकी गतियाँ हैं, जो महत्वाकांक्षा उज्ज्वलित हो ऊपर उठती है वह उन्हींकी क्रिया है। उनका भाव अदम्य है, उनकी दृष्टि और इच्छा गरुड़-

की उड़ानके सदृश ऊँचे और बहुत दूर-दूरतक पहुँचनेवाली होती हैं। उनके पादप्रक्षेप उत्थानमें अत्यन्त वेगवान् होते हैं और उनकी भुजाएँ संहारके लिये और संरक्षणके लिये सदा ही विस्तारित रहती हैं। कारण, वह भी माता ही हैं और उनका वात्सल्य भी वैसा ही आत्यन्तिक है जैसा कि उनका कोप; और उनकी करुणा भी अत्यन्त प्रगाढ़ और भावपरिपूर्ण होती है। जब साधक उनका आवाहनकर उन्हें अपनी शक्तिके साथ आनेका अवसर देता है तब एक क्षणमें जमकर सख्त बनी हुई बाधाएँ भी चकनाचूर हो जाती हैं अथवा वे शत्रु भी एक क्षणमें तहस-नहस हो जाते हैं जो साधकपर आक्रमण करते हैं। उनका क्रोध विद्रोहियोंके लिये भयंकर और उनके प्रभाव-प्रेरणका आवेग दुर्बलों और भीरुओंके लिये दुस्सह होता है; परन्तु जो महान्, बलवान् और महानुभाव हैं वे उनपर प्रीत होते और उनकी पूजा करते हैं; क्योंकि वे यह समझते हैं कि इनका प्रहार भी कल्याणकारी है, उससे हमारे अंगोंमें जो कोई विद्रोह उत्पन्न करनेवाली दुर्बलता होगी वह—उस चोटसे—शक्ति और पूर्ण सत्यमें परिणत हो जायगी, जो कुछ वक्र

या उच्छृंखल होगा वह सीधा हो जायगा, जो कुछ अशुद्ध या दोषयुक्त होगा वह साफ निकल जायगा। इनकी कृपासे जो काम एक दिनमें हो जाता है, यह न हों तो उसके बननेमें कई शताब्दियाँ लग जायँ; इनके बिना जो आनन्द प्राप्त होता है वह विशाल, गम्भीर अथवा मृदु और मधुर और सौन्दर्यमय भी हो सकता है, पर उसमें उसकी अनन्य प्रगाढ़ताका प्रज्वलित उल्लास नहीं रह सकता जो महाकालीसे ही प्राप्त होता है। महाकाली ही ज्ञानको विजयशालिनी शक्ति प्रदान करती हैं, सौन्दर्य और समन्वयको उदात्त और ऊर्ध्वगामिनी गति देती हैं और वही पूर्णत्वके लिये होनेवाले मन्द और कठिन प्रयासको ऐसा प्रोत्साह प्रदान करती हैं कि उसकी शक्ति सहस्रगुण बढ़ जाती है और लम्बा रास्ता बहुत संक्षिप्त हो जाता है। उनकी हर बातमें परम अतिशय आनन्द, उच्चतम ऊँचाई, महानुभावतम उद्देश्य और विशालतम दृश्य है। इनमें जरा-सी भी कोई कमी हो तो उनको सन्तोष नहीं होता। इसलिये इनमें जो शक्ति है वह भगवान्‌की विजयाशक्ति है और इसलिये, आगे फिर कभी क्या, बल्कि अभी जो महान् कार्य सिद्ध हो सकता

है वह इन्हींकी दयासे—इन्हींके तेज, उत्ताप और वेगसे हो सकता है।

ज्ञान और शक्ति, केवल ये ही दो रूप परमा परमेश्वरी माताके नहीं हैं, उनकी प्रकृतिमें और भी सूक्ष्मतर एक रहस्य है और वह एक ऐसी चीज है कि जिसके बिना ज्ञान और शक्ति अपूर्ण ही रह जायँगे और पूर्णत्व भी पूर्ण न होगा। इन ज्ञान और शक्तिके ऊपर सनातन सौन्दर्यकी अलौकिक चमत्कृति है, दैवी समन्वयका अगम्य रहस्य है, अप्रतिहत जगद्व्यापिनी मनोहरता और आकर्षणका ऐसा वशीकरण है कि वह अपनी ओर सब वस्तुओं और शक्तियों और सत्ताओंको खींचता है, एकत्र बाँधे रहता है और उन्हें एक दूसरेके साथ मिलने और एक होनेको विवश करता है जिसमें वह आनन्द जो परदेके अन्दर छिपा हुआ है, वहाँसे अपना खेल खेले और उन्हें अपने स्वर और रूप बनावे। यह शक्ति है महालक्ष्मीकी, और देहधारी जीवोंके हृदयोंके लिये भागवत शक्तिका और कोई रूप इससे अधिक मोहक या आकर्षक नहीं है। महेश्वरी इस पार्थिव-प्रकृतिकी क्षुद्रताके लिये इतनी अविचल और महान्

और दूर मालूम हो सकती हैं कि वह वहाँतक पहुँच न सके या वह उनका भार धारण भी न कर सके; महाकाली भी इतनी द्रुतगति और प्रचण्ड हैं कि इस पार्थिव-प्रकृतिकी दुर्बलता उनका भार वहन न कर सके; पर महालक्ष्मीकी ओर सभी बड़े आनन्द और लालसाके साथ दौड़ पड़ते हैं। कारण, वह भगवान्‌के उन्मादक माधुर्यका मोहजाल फेंकती हैं; उनके समीप रहनेमें अगाध सुख होता है और अपने हृदयके अन्दर उन्हें मालूम करना जीवनको आनन्दोन्माद और कौतुकमय बना देता है; शोभा और मोहकता और मृदुता उनसे वैसे ही प्रवाहमान होती हैं जैसे सूर्यसे ज्योति। जहाँ कहीं वह अपनी आश्चर्यमयी दृष्टि डालती हैं या अपनी स्मितकान्ति बरसाती हैं वहाँ आत्मा अभिभूत हो जाता है, विमुग्ध होकर कैदी-सा बन जाता है और अथाह आनन्दकी गभीरतामें निमग्न हो जाता है। उनके हाथोंका स्पर्श चुम्बकके समान है और उनका रहस्यमय मृदु प्रभाव मन, प्राण और शरीरमें लालित्यमय सूक्ष्मता ले आता है और जहाँ उनके चरण अवस्थित होते हैं वहाँ उन्मत्त कर देनेवाले आनन्दके अपूर्व स्रोत बहने लगते हैं।

परन्तु इस मोहिनी शक्तिको प्रसन्न करना और उनकी सत्ता अपने अन्दर बनाये रहना आसान नहीं है। महालक्ष्मी तब प्रसन्न होती हैं जब अन्तःकरण और आत्मा सामञ्जस्य और सौन्दर्यको प्राप्त हों, चिन्ता और भाव सामञ्जस्य और सौन्दर्यको प्राप्त हों, बहिर्जगत्के प्रत्येक कर्म और गतिमें सामञ्जस्य और सौन्दर्य हो। जहाँ कहीं गुप्त विश्वानन्दकी ताल स्वरच्छन्दताके साथ साम्य होता है और सर्व सौन्दर्यमयके आह्वानका प्रत्युत्तर होता है, जहाँ सम्मिलन और ऐक्य होते हैं, और जहाँ अनेक जीवनोंका सानन्द प्रवाह भगवान्की ओर मुड़ता है वहीं, उसी वातावरणमें, वह रहना पसन्द करती हैं। पर जो कुछ कदर्य, हीन और नीच है, और जो कुछ दरिद्र, अधम और मलिन है, और जो कुछ नृशंस और स्थूल है वह सब उनके आगमनका बाधक है। जहाँ प्रेम नहीं, सौन्दर्य नहीं, अथवा जहाँ प्रेम और सौन्दर्य उत्पन्न होना ही नहीं चाहते, वहाँ वह नहीं आतीं; जहाँ प्रेम और सौन्दर्य होकर भी निकृष्ट पदार्थोंसे मिले रहते और बदशकल हो जाते हैं वहाँसे वह जल्द ही प्रस्थान करती हैं या अपना ऐश्वर्य वहाँ बरसानेमें तत्पर नहीं

होती। यदि वह अपने आपको मनुष्योंके हृदयोंमें स्वार्थ और द्वेष और ईर्षा और मत्सर और असूया और कलहसे घिरी हुई पाती है, यदि अमृतपात्रमें विश्वासघात और लोभ और कृतघ्नताके विष भरे हों, यदि स्थूल आवेग और मलिन काम भक्तिको अधःपतित करें तो ऐसे हृदयोंमें दयामयी ललिता लक्ष्मीदेवी कभी न ठहरेंगी। उनपर एक दैवी घृणा सवार हो जाती है और वह वहाँसे चल देती हैं। कारण, निर्बन्धपर या प्रयत्नशील होना महालक्ष्मीके स्वभावके बाहर है। अथवा अपना मुँह छिपाकर वह इसलिये प्रतीक्षा करती हैं कि यह कटु विषभरा पैशाचिक तुच्छ द्रव्य परित्यक्त होकर लोप पा जाय जिसमें वह फिरसे अपना सुखद प्रभाव प्रतिष्ठित करें। संन्यासियोंकी रिक्तता और कठोरता उन्हें पसन्द नहीं है, न हृदयकी गभीर उमंगोंका दमन और आत्मा और प्राणोंके सौन्दर्यगत अंशोंका कठोर निर्दलन ही उन्हें पसन्द है। कारण, प्रेम और सौन्दर्यके द्वारा ही वह मनुष्योंपर भगवान्‌के युग (जुए) का भार रखती हैं। वह अपने सृजनकार्यकी परमावधिमें जीवनको स्वर्गीय कलाकी एक सुन्दर समृद्ध वस्तु बना देती हैं, सारा जीवन पवित्र आनन्दका एक काव्य बन जाता है; संसार-

की सारी समृद्धियाँ एकत्र हो आती हैं और केन्द्रीभूत होकर एक ऐसी व्यवस्थाके काम आती हैं जो सबसे श्रेष्ठ व्यवस्था है और इस व्यवस्थाक्रममें सादी-से-सादी और साधारण-से-साधारण वस्तुएँ भी उनके समन्वयसाधक अन्तर्ज्ञान और उनके चैतन्यके निःश्वाससे अलौकिक चमत्कारसे चमक उठती हैं। हृदयमें जब उन्हें आसन मिलता है तब वह ज्ञानको आश्चर्यके शिखरपर उठा ले जाती हैं और उसके सामने उस परमानन्दके गुप्त रहस्य खोल देती हैं जो संपूर्ण ज्ञानके परे है, भक्तिको भगवान्के आकर्षण-की वेगवती शक्ति भेंट करती हैं, सामर्थ्य और शक्तिको वह तालस्वर बद्धानुछन्द सिखा देती हैं जिससे उनके कार्योंकी धृति छन्द और मानके साथ बनी रहे और पूर्णत्वपर ऐसी मोहिनी डाल देती हैं कि वह चिरस्थायी हो जाता है।

महासरस्वती माताकी कर्म-शक्ति और सिद्धि और सुव्य-वस्थाकी आत्मशक्ति हैं। चारोंमें यह सबसे छोटी हैं और कार्य-साधनके कौशलमें सबसे कुशल और भौतिक प्रकृतिके लिये सबसे समीप हैं। महेश्वरी सृष्टि-शक्तियोंकी केवल बड़ी-बड़ी रेखाएँ खींच देती हैं, महाकाली उनके ओजस् और संवेगको

चालित करती हैं, महालक्ष्मी उनके छन्द और मान आविष्कृत करती हैं; परन्तु महासरस्वती सम्पूर्ण संविधान और उसके साधनकी एक-एक बातका, सब अंगोंके परस्पर यथाविहित सम्बन्धों और सब शक्तियोंके कार्यकारी एकीकरणका और कार्य-मात्रकी निर्दोष सिद्धि और पूर्णताका अध्यक्षरूपसे तत्त्वावधान करती हैं। सम्पूर्ण विद्या और कला और कौशल महासरस्वतीके साम्राज्यके इहातेमें हैं। वह सदा ही अपनी प्रकृतिमें आभ्यन्तर और यथार्थ-निश्चित ज्ञान, सूक्ष्मता और धीरता, पूर्ण कर्मोंके विशुद्ध यथार्थता सम्पन्न अन्तर्ज्ञानी मन, सचेतन हाथ और विवेकी चक्षु धारण किये रहती हैं और जिन्हें वह वरण करती हैं उन्हींको यह सब प्रदान करती हैं। यह शक्ति समस्त लोकोंकी समर्थ, अक्लान्त, सावधान और कुशल शिल्पशक्ति, तथा व्यवस्थापक, शासक, नियमविद्, कलाविद् और लोकविभागकर्त्री शक्ति हैं। जब वह प्रकृतिके रूपान्तर और नवनिर्माणका काम हाथमें लेती हैं तब उनका काम बड़ा ही श्रमसाध्य और बारीक होता है और प्रायः वह हमारे अधीर चित्तको बड़ा ही धीमा और कभी समाप्त न होनेवाला-सा मालूम होता है, पर वह काम यथार्थमें होता है

अविरत, अखण्ड और निर्दोष। कारण, उनके कर्मोंका संकल्प अति सावधान, सदा जाग्रत और कभी न थकनेवाला होता है; वह हमारे ऊपर झुकी हुई रहती हैं और हर चीज, हरबातको देखती और स्पर्श करती हैं, वारीक-से-बारीक दोष यां छिद्र, गाँठ या अपूर्णताको ढूँढ़ निकालती हैं और जो कुछ पहले हुआ तथा आगे जो कुछ करना बाकी है उसे सोचती-समझती और ठीक-ठीक नापती-जोखती हैं। कोई वस्तु उनके लिये इतनी छोटी या बाहरसे ऐसी नाचीज़ नहीं कि जिसके ऊपर उनकी दृष्टि न हो; कोई भी स्पर्शागोचर या छद्मवेशी या अव्यक्त वस्तु उनकी दृष्टिसे नहीं बच सकती। प्रत्येक अंग, प्रत्येक अंशको वह बार-बार ढालती हैं जबतक कि उसे उसका सच्चा रूप प्राप्त न हो, वह सम्पूर्णके अन्दर अपने यथार्थ निश्चित स्थानमें वैठ न जाय और अपना नियत कार्य पूरा न करे। वस्तुओंकी इस अविरत श्रमसाध्य व्यवस्था और पुनर्व्यवस्थामें इनकी दृष्टि सारी आवश्यकताओंपर और उनकी पूर्तिके साधनोंपर एक साथ रहती है, और इस वातका तो उन्हें सहज ज्ञान रहता ही है कि कौन वस्तु ग्रहण की जायगी और कौन त्याग दी जायगी;

सहज ज्ञानसे या अभ्यर्थनाके साथ ही यह निश्चय भी करती हैं कि किस कामका कौन ठीक साधन होगा; कौन ठीक समय, ठीक अवस्था और ठीक क्रम होगा। असावधानी, अवहेलना और आलस्यसे वह घृणा करती हैं; किसी तरह निपटाया हुआ, जल्दीमें या बे-तरतीब किया हुआ काम उन्हें पसन्द नहीं है; सब तरहका भद्दापन, अधूरापन और लक्ष्यकी ओर देखनेमें कच्चापन, मिथ्या संयोजन और साधनों और गुणोंका दुरुपयोग और किसी कामको बिना किये ही छोड़ देना या आधा करके छोड़ देना यह सब उनके स्वभावके लिये अप्रिय और विपरीत है। जब उनका कोई काम हो चुकता है, तब उसमें ऐसा नहीं होता कि करनेकी कोई बात भूलसे रह गई हो, या कोई अंश कहीं-का-कहीं जा लगा हो, या छोड़ दिया गया हो अथवा भद्दे तौरपर रखा गया हो; सब काम पक्का, दुरुस्त, पूरा और देखने ही योग्य होता है। पूरी पूर्णताके बिना उन्हें चैन नहीं मिलता और अपनी सृष्टिकी पूर्णताके लिये यदि आवश्यकता पड़े तो अनन्तकाल तक उसी कामको करते रहनेके लिये वह तैयार रहती हैं। इसलिये माताकी शक्तियोंमेंसे

यही शक्ति मनुष्य और उसकी सहस्रों अपूर्णताओंको बड़े ही धैर्यके साथ बर्दाश्त करती हैं। दयामयी हैं, हँसमुख हैं, सदा समीप और सहायतामें सन्नद्ध रहती हैं; ऐसा नहीं कि जल्दी रूठकर चली जायँ या हतोत्साह हों; मनुष्यके बार-बार चूकनेपर भी उसका बराबर साथ देती हैं, उनका हाथ हमें हर क़दमपर सम्भालता है-यदि हम अपने संकल्पमें अनन्य, निष्कपट (ऋजु) और सच्चे हों; कारण, दुविधा जिस मनमें है उसे वह बर्दाश्त नहीं करतीं और नटोंकी-सी बनावट और बहुरूप और आत्मप्रवंचना और व्याजके लिये उनका आँखें खोलनेवाला श्लेष बड़ा ही निर्दय होता है। हमारे जो-जो अभाव हैं उनके लिये वह हमारी माताके समान हैं, हमारी जो कठिनाइयाँ हैं उनमें वह सुहृद्के समान हैं, निवन्धपर और अविचलित भावसे मन्त्रणा देती और उपदेश करती हैं। विषाद, वक्रभाव और ग्लानिके बादलोंको अपनी चमकती हुई हँसीसे उड़ा देती हैं, जो सहायता सदा प्रस्तुत है उसकी याद दिलाती हैं, सनातन सूर्य-प्रकाशकी ओर निर्देश करती हैं और इस तरह स्थिर, शान्त और दीर्घ उद्योगशील रहती हुई उसी गहरी और सतत प्रचोदनामें लगी

रहती हैं जो हमें परा प्रकृतिकी अखण्डताकी ओर वहा ले जाती हैं। अन्य शक्तियोंका सब काम अपनी पूर्णताके लिये इन्हींपर अवलम्बित रहता है। कारण, भौतिक नींवको यही दृढ़ करती हैं, ब्योरेका विस्तार इन्हींके द्वारा होता है और यही समूची इमारतका कवच निर्माण करती और उसे मजबूत बनाती हैं।

भगवती माताकी और भी कई बड़ी विभूतियाँ हैं, पर उन्हें नीचे ले आना बहुत कठिन हुआ और इस भू-आत्माके क्रमविकासमें वे इतनी स्पष्टताके साथ सामने भी नहीं आयी हैं। उनमें कुछ सत्ताएँ ऐसी हैं जिनके बिना विज्ञान-चैतन्यकी भूलोकमें सिद्धि (सिद्धविकास) नहीं हो सकती; इनमें मुख्यतः वह सत्ता है जो माताके रहस्यमय और तेजोमय गाढ़ आनन्दकी विभूति है—उस आनन्दकी विभूति है जो परम भागवत प्रेमसे प्रवाहित होता है, जो ही विज्ञान-चैतन्यके ऊँचे-से-ऊँचे शिखरसे लेकर जड़-प्रकृतिके नीचे-से-नीचे गर्ततककी खाई भरकर दोनोंको एक कर देता है, जिसके हाथमें ही विलक्षण दिव्य जीवनकी कुञ्जी है और जो इस समय भी अपने गुह्य स्थानमें बैठे-बैठे जगत्की अन्य सब शक्तियोंके कार्यका सहारा

बना हुआ है । पर मानव-प्रकृति बद्ध, अहंकारयुक्त और तमसाच्छन्न होनेसे इन महती सत्ताओंको ग्रहण करने या उनके प्रचण्ड कर्मका साथ देनेके लिये तैयार नहीं है । जब ये चार अभिव्यक्तियाँ, दिव्यत्वमें परिणत मन, प्राण और शरीरमें अपनी विभिन्न गतियोंका साम्य और मुक्ति प्रतिष्ठित करेंगी, तभी वे अन्य दुर्लभ विभूतियाँ इस भवचक्रकी गतिमें प्रकट हो सकती हैं और तब दिव्य कर्म सम्भव हो सकता है । कारण, जब उनकी सब विभूतियाँ उनके अन्दर एकत्र होकर प्रकट होंगी और उनकी विभिन्न कर्मगतियाँ विभिन्न ताल और स्वरकी मेलद्वारा एकत्वमें एक हो जायँगी और इस तरह उनके अन्दर वे अपने परम देवत्वको प्राप्त करेंगी तब यह होगा कि माता परा महाशक्तिके रूपमें प्रकट होंगी और वह अपनी परमा दिव्यताओंको उनके अनिर्वाच्य तैजसाकाशसे बरसाती हुई नीचे ले आवेंगी । तब मनुष्यकी प्रकृति चिन्मय दिव्य प्रकृतिमें परिणत हो सकती है कारण, तब परम सत्-चैतन्य और सत्-शक्तिके सभी मूल तार एकत्र हो जाते हैं और जीवनकी वीणा ऐसी बन जाती है कि वह सनातनके संगीतके स्वरोंके साथ स्वर मिलाकर बजे ।

यदि तुम इस दिव्यत्वको प्राप्त करना चाहते हो तो बिना किसी दोषदृष्टि या विरोधभावके अपने-आपको माता और उनकी विभूतियोंके हाथोंमें सौंप दो और उन्हें अपने अन्दर बिना किसी रुकावटके अपना (माताका) कार्य करने दो। तुम्हारे अन्दर तीन बातें अवश्य हों—चेतनता, नमनशीलता और निस्सङ्कोच आत्मसमर्पण। तुम्हारे मन और अन्तरात्मामें, तुम्हारे हृदय और प्राणमें, तुम्हारे शरीरके एक-एक रन्ध्रतकमें माता और उनकी विभूतियों तथा उनके कार्यका भान, जाग्रत ज्ञान रहना चाहिये; कारण यद्यपि तुम्हारे अज्ञान-अन्धकारमें पड़े रहते, तुम्हारे अचेतन अंगों और क्षणोंमें वह तुम्हारे अन्दर कार्य कर सकती हैं और करती हैं तथापि तुम्हारा अज्ञानमें अचेत पड़ा रहना और तुम्हारा जागकर माताके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना, ये दोनों बातें एक ही नहीं हैं। तुम्हारी सारी प्रकृति माताके स्पर्शके लिये नमती हुई होनी चाहिये—खुदमस्तीसे भरा हुआ उस अज्ञानी मनके सदृश संशयापन्न नहीं जो सदा अविश्वासयुक्त प्रश्न, संशय और विवाद ही किया करता है और इस तरह अपने ही प्रबोधन और परिवर्तनका शत्रु होता

है; अपनी ही गतियोंका हठ पकड़े रहनेवाले प्राणोंकी तरह हठी नहीं जो प्रत्येक दिव्य प्रभावके विरुद्ध अपनी अविधेय इच्छाओं और अदम्य वासनाओंको ही वार-बार वे-मुरव्वत पेश किया करते हैं; रुकावट डालनेवाले अक्षमता, जड़ता और तमस्से टस-से-मस न होनेवाले भौतिक चैतन्यकी तरह जड़ नहीं जो अपने अनात्म-जीवन-क्रम या मन्द तन्द्रा या जड़ निद्रामें खलल डालनेवाले प्रत्येक चैतन्य स्पर्शका बाधक होता और क्षुद्रता और अन्धकारके ही आनन्दमें लिपटकर उस स्पर्शके विरुद्ध पुकार मचाता है। वह नमनशीलता तुम्हारी प्रकृतिके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें, आन्तरिक सत्ता और वाह्य सत्ताको, विना किसी सोच-सङ्कोचके समर्पित कर देनेसे आ जायगी; जो ज्ञान और ज्योति, जो शक्ति, समन्वय और सौन्दर्य, जो पूर्णत्व ऊपरसे नीचे वरसा करते हैं उनके लिये अपने-आपको खोल देनेसे और उसी हालतमें सदा रहनेसे, वह चैतन्य भी तुम्हारे अन्दर सर्वत्र जाग उठेगा। शरीरतक जाग उठेगा और अन्तको उसका भौतिक चैतन्य भी अधःस्थित न रहकर विज्ञानमयी परात्पराशक्तिके साथ एक हो जायगा, माताकी सब शक्तियोंको

ऊपर-नीचे, अगल-बगल सर्वत्र ओत-प्रोत अनुभव करेगा और पुलकित होकर परमप्रेम और आनन्दको प्राप्त होगा।

पर सावधान, अपने इस क्षुद्र भौतिक मनसे भगवती माताको समझने और विचार करनेकी चेष्टा मत करना—उस मनसे जो अपने परेकी चीज़ोंको भी अपने ही नाप और मानसे, अपने ही सङ्कीर्ण तर्कवितर्क और प्रमादशील धारणासे, अपने ही अथाह उद्दण्ड अज्ञान और क्षुद्र आत्मविश्वस्त ज्ञानसे जाँचना पसन्द करता है, मनुष्यका मन जो धुँधला-सा प्रकाश पानेवाले अज्ञान-अन्धकारके कैदखानेमें बन्द है, भागवत शक्तिके पदविक्षेपोंकी बहुदिक्व्यापी मुक्तता नहीं देख सकता, नहीं समझ सकता। उसकी लुढकती-पुढकती समझ माताकी दृष्टि और कर्मकी द्रुतगति और विचित्रताका पीछा नहीं कर सकती; उनकी गतिका मान मानवी-मनका पैमाना नहीं है। उनकी अनेक विध विभिन्न व्यक्तिरूपोंके द्रुत परिवर्तनसे, उनके छन्दोंके निर्माण और छन्दोंके भङ्गसे, उनकी गतिकी तेजी और फिर उसी तेजीको धीमी कर देनेसे, भिन्न-भिन्न लोगोंकी समस्याओंमें उनके हस्तार्पण-की भिन्न-भिन्न रीतियोंसे, कभी एक रास्तेपर चलतीं अकस्मात्

उसे छोड़कर दूसरे रास्तेपर आतीं और देखते-देखते फिर तीसरेपर पैर रखतीं और इन सब रास्तोंको एक करतीं—ऐसे उनके विलक्षण विचरणसे घबरायी हुई बुद्धि पराशक्तिके मार्गको नहीं पहचान सकती जब वह पराशक्ति गहन अन्धकारसे ऊपर परम-ज्योतिकी ओर चक्कर काटती हुई तेजीके साथ चलती हैं। इसलिये जो कुछ तुम कर सकते हो वह यह है कि अपने आत्मा (हृद्पद्म) को उसकी ओर खोल दो और अपनी गभीरतम चित्प्रकृतिके साथ उसे अनुभव कर तथा हृत्पद्मलोचनसे उसे देखकर सन्तुष्ट रहो, क्योंकि ये ही केवल सत्यकी माँगका सीधा और बेखटक प्रत्युत्तर देते हैं। तब माता स्वयं ही तुम्हारे मन और हृदय और प्राण और भौतिक चैतन्यपर इन्हीं सबके हृत्तत्वोंके द्वारा अपना प्रकाश डालेंगी और उन्हें अपने मार्ग और अपनी प्रकृति भी दिखा देंगी।

अज्ञानी मन भागवत शक्तिसे यह चाहता है कि सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताके सम्बन्धमें हमारे जैसे भद्दे भौतिक भाव हैं उन्हींके अनुसार भागवत शक्ति सदा अपना काम करे, इस तरहकी भूलसे भी तुम्हें बचना होगा। कारण हमारा मन हर मौकेपर अद्भुत करामात, अनायास सिद्धि और चकाचौंध

करनेवाली प्रभा देखनेके लिये पुकार मचाये रहता है, क्योंकि इसके विना भगवान्के होनेकी बातपर उसको विश्वास ही नहीं होता। माता अज्ञानके साथ वर्त रही हैं, अज्ञानके ही जगत्में; यहाँ वह उतर आयी हैं और सर्वथा वह ऊपर ही नहीं हैं। वह अपने ज्ञान और शक्तिको अंशतः छिपाती हैं और अंशतः प्रकट करती हैं, प्रायः उन्हें अपने हस्तकों और विभूतियोंसे छिपा रखती हैं और अनुसन्धित्सुमनके रास्तेसे, महदाकांक्षी अध्यात्मचित्तके रास्तेसे, युद्धयमान प्राणके रास्तेसे, बद्ध और दुखी भौतिक प्रकृतिके रास्तेसे ही चलती हैं जिसमें वह इन सबको दिव्यत्व प्राप्त करा दें। कुछ ऐसे नियम हैं जो परमेश्वरकी इच्छासे ही निर्दिष्ट हैं जिनका पालन करना होगा, बहुत-सी ऐसी बँधी हुई ग्रन्थियाँ हैं जिन्हें छुड़ाना होगा जो अकस्मात् नहीं काट डाली जा सकतीं। इस क्रमविकासशील पृथिवीको असुर और राक्षस अपने अधिकारमें किये हुए हैं और उन्हींके बहुत कालसे जीते हुए गढ़ और प्रदेशमें उनका सामना करना होगा और उन्हींकी पेश की हुई शर्तोंपर उन्हें जीतना होगा; हमारे अन्दर जो मानव-भाव है उसे मार्ग दिखाना होगा और

तैयार करना होगा जिसमें वह अपनी सीमाओंको पार करे; पर यह मानव-मन बहुत ही दुर्बल और अज्ञानी है, यह अकस्मात् अपनेसे बहुत आगे, बहुत ऊँचेपर नहीं उठ सकता। भागवत चैतन्य और शक्ति मौजूद हैं और साधन-पथमें जब जो काम आवश्यक होता है उसे प्रतिक्षण करते हैं, निर्दिष्ट पथपर निर्दिष्ट पदके साथ आगे बढ़ते हैं और अपूर्णताके बीचमें उस पूर्णत्वका साधन करते हैं जो पूर्णत्व कि आनेवाला है। पर जब विज्ञानमयी पराबुद्धि तुम्हारे अन्दर अवतरित होगी तभी माता सीधे तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार कर सकती हैं जैसा कि पराशक्ति पारबौद्धिक प्रकृतियोंके साथ करती है। यदि तुम अपने मनके पीछे चलो तो यह मन माताको, जब वह तुम्हारे सामने प्रकट होंगी तब भी नहीं पहचान सकेगा। आत्माके पीछे चलो, मनके पीछे नहीं; उस आत्माके पीछे चलो जो सत्यका अनुसरण करता है, उस मनके पीछे नहीं जो दिखावपर उछलता है; भागवत शक्तिका भरोसा रखो और वह शक्ति तुम्हारे अन्तर्गत दिव्य तत्त्वोंको मुक्त करेगी और इन सबको भागवत प्रकृतिके रूपमें ढाल देगी।

यह दिव्य रूपान्तर भागवत संकल्पसे ही आदिष्ट है और पृथिवीके भौतिक चैतन्यके क्रमविकासमें अनिवार्य है; कारण इसका उपर्युत्थान समाप्त नहीं हुआ है और बुद्धि ही इसका अन्तिम शिखर नहीं है। पर यह परिवर्तन हो, व्यक्तरूपमें हो और स्थायी हो, इसके लिये यह आवश्यक है कि नीचेसे उसके लिये पुकार हो ऐसी इच्छाशक्तिके साथ कि, जब वह ज्योति उतरे तब उसे वह पहचाने और उससे मुँह न फेरे; साथ ही यह आवश्यक है कि ऊपरसे उसके लिये भगवान्‌का अनुमोदन हो। इस अनुमोदन और पुकारके बीचमें जो शक्ति मध्यस्थता करती है वह भगवती माताकी सत्ता और शक्ति है। माताकी ही शक्ति, न कि कोई मानवी प्रयत्न और तपस्या, उस पटलको भेद सकती है और उस परदेको फाड़ सकती है, उस पात्रको ढाल सकती है और इस अन्धकार, झूठ, मृत्यु और दुःखके जगत्‌में सत्य, ज्योति, दिव्य-जीवन और अमरत्वका आनन्द ला सकती है।